



March, 2010

## संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चिंतन एवं उसकी वर्तमान में सार्थकता



\* डॉ. ओमप्रकाश पारीक

\*बा.शो. राम राज. स्नातकोत्तर कला महाविद्यालय, अलवर

किसी भी प्राणी को जीवित रहने के लिये विशेष प्रकार की मिट्टी, जलवायु, भौगोलिक वातावरण तथा सामाजिक परिवेश की आवश्यकता होती है ये सभी तत्व मिलकर सामान्यतः पर्यावरण की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। इस कारण पर्यावरण एक आवरण या परिवृत का नाम है जो जीव जगत को चारों ओर से आवृत किये रहता है। "परितः आवृणोति जीवजगदिति पर्यावरणम्" जीव जगत् तथा पर्यावरण के मध्य एक शाश्वत गतिशील अन्तःसम्बन्ध होता है जिसके कारण दोनों में क्रिया प्रति क्रिया होती रहती है। कभी पर्यावरण जीव जगत् को प्रभावित करता है तो कभी जीव जगत् पर्यावरण को। मानव ऐसा जैविक घटक है जो जीवन निर्वाह के लिये भौतिक संसाधनों के अतिरिक्त सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश की आवश्यकता का भी अनुभव करता है, इसलिये पर्यावरण के दो भेद हैं – 1. भौतिक, 2. सांस्कृतिक।

भौतिक पर्यावरण में प्राकृतिक तथा मानव निर्मित पदार्थों की क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जो भौतिक परिवेश सृजित होता है, वह भौतिक पर्यावरण है। किसी भी स्थान के भौतिक संसाधन तथा पर्यावरण कुछ विशेष प्रकार की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सृजित करते हैं जिसके फलस्वरूप जो परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं, वे परिस्थितियां उनमें रहने वाले मनुष्यों के खान-पान, रहन-सहन, विचार प्रणाली, मानसिक स्तर, विकास एवं सम्पूर्ण जीवन दर्शन पर प्रभाव डालती है, यह सांस्कृतिक पर्यावरण है। अस्तु संस्कृत साहित्य में वेदों से लेकर परवर्ती साहित्य में परिवर्तन के सम्बन्ध में वर्णन बहुधा प्राप्त होते हैं जो हमारे मनीषियों की पर्यावरण विषयक जागरूकता का दिग्दर्शन है। पाराशर गृह्य सूक्त में निष्क्रमण संस्कार का उद्देश्य सूर्य की प्राणधारण शक्ति से शिशु को पुष्ट करना बताया गया है :-

चतुर्थमसि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति।

वर्हि निष्क्रमणञ्चैव तस्य कुर्याच्छिशो शुभम् ॥

पा.ग .सूक्त 1-17-5 पुराणों में जल के स्रोत के रूप में

तालाबों और वृक्षों के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। यथा –

यशकूपसमावापी दशवापी समोहदः ।

यशहृदसमो पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः ॥

वृक्षों की उपादेयता इस सीमा तक स्वीकार की गई है, उसी ग्राम को शोभन बताया गया है, जहां पहले वृक्षारोपण करके तत्पश्चात् गृह बनाये गये हों :-

आदौ वृक्षाणि विन्यस्य पश्चात् गेहानि विन्यसेत् ।

अन्यथा यदि कुर्यात् तु तद् ग्राम नैव शोभनम् ॥

महाभारत में वनरक्षण के विषय में कहा गया है :-

मा वनं छिन्धी सत्याहम् ।

पुष्यं पुष्यं विचिन्वीत मूलोच्छेदं न कारयेत् ॥

(महामा. अनुशासन पर्व 58/23-24)

वनस्पतियां जितनी समृद्ध होंगी, मानव जीवन भी उतना ही समृद्ध होगा। यथा-

अतस्त्वं देव वनस्पत शतवत्सो विरोह ।

सहस्रबत्सा हि वयं रुहेम ॥

(यजु. 5-43)

अर्थात् हे वनस्पते देव तुम शत-सहस्र अंकुरों वाले वृक्ष के समान फलो तथा हम भी उसी प्रकार फलें। शुद्ध जल की उपलब्धता के विषय में महाभारत में वर्णित है कि पुष्करिणी, कूप, तड़ाग आदि के निर्माण को इस संसार में अत्यन्त उत्कृष्ट पुण्य कर्म कहा है -

पुष्करिण्यः तडागानि कूपांश्चैवात्र खानयेत् ।

एतत् सुदुर्लभतरमिह लोके द्विजोत्तमः ॥

महा.भा.अनु. 68/21

महाभारत में ही पशु संरक्षण तथा पशु संवर्धन का महत्व स्थापित करते हुये पशु वध को घोर पातक बताया गया है। पशुहन्ता सहस्रों वर्षों तक पकाया जाता है अथवा पाप का फल भोगता है। यथा -

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत ।  
तावदवर्ष सहस्राणि पच्यते पशु द्यातकः ॥

मनुस्मृति में पर्यावरण को समृद्ध करने हेतु अनेक प्रकार से परोक्ष तथा प्रत्यक्ष आचार संहिता का उपदेश किया गया है। यथा—

न नदी तीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ।  
नाप्सु मूत्रपुरीषं वाष्ठीवन वा समुत्सृजेत् ॥  
हमारे शास्त्रों में प्रदूषण से मुक्त रहने के लिये मानव को सावधान किया जाता है। यथा निर्णय सिन्धु का यह श्लोक—  
सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रं संस्कृतम् ।  
कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्पष्टव्यमसंस्कृतम् ॥  
वापीकूपतद्गागादौ यज्जलं स्यादसंस्कृतम् ।  
अपयं तद भवेत् सर्वं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

निर्णय सिन्धु पूर्वाद्ध — 3

रघुवंश में कालिदास आत्मज पुत्र की चिन्ता न करके अपने परिश्रम तथा तप से नये-नये वृक्षों से तपोवन को अनुपम बनाकर वृक्षों पादपों को सुपुत्र बनाने के कारण धन्य हैं —

छायाविनिताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठ संभाव्य फलेषुवमीशु ।  
तस्यातिकीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ॥  
(रघु 46-13)

वृक्षों के प्रति कालिदास का पक्षपात इतना अधिक है कि वे अनुसूया के मुख से यह कहलवाने के लिये विवश हो जाते हैं —“हला शकुन्तले । त्वतोऽपि तातकण्वस्याश्रमवृक्षका प्रियतरा इति तर्कयामि” और इसके उत्तर में शकुन्तला यह कहती है—“न केवलं तात नियोग एव, अस्ति में सोदरस्नेह एतेषु” । महर्षिकण्व विदाई के समय वृक्षों को शकुन्तला का बन्धु कहते हैं—

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरयं वनवास बन्धुभिः ।

अगर हम अभिज्ञान शाकुन्तलम् के वर्णनों पर विचार करें तो वहां शकुन्तला वस्तुतः प्रतिनिधि है, उस समाज की जो

वृक्षारोपण तथा वृक्षसंरक्षण को ही अपने जीवन का अंग मानता है। पादपों का एक पल्लव भी अपने स्वार्थ के लिये ग्रहण करना कालिदास को असह्य है, भले ही वह नारी के सहज श्रृंगार का लोभनीय विषय है —

पातु न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या ।  
नादते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ॥  
आद्ये व कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,  
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

(अभि. 4/11)

कालिदास के द्वारा किया गया प्रकृति का मानवीयकरण प्रकृति वृक्ष लतादि का मानव अस्तित्व के लिये अविभाज्य अंग घोषित करना है। कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के मंगलाचरण में अष्टमूर्तियों (अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्र और यजमान) के शिव अर्थात् मंगलकारी तत्व की आराधना की है, इन सभी के समत्व अर्थात् साम्यावस्था ही पर्यावरण की शुद्धता की अवस्था है एवं इनकी प्रतिकूलता ही पर्यावरण विध्वंस वैश्विक उष्णता (ग्लोबल वार्मिंग) का प्रतीक है। संस्कृत साहित्य में उक्त वर्णित पर्यावरणीय तथ्यों को वर्तमान में प्रयुक्त कर मानवीय दृष्टिकोण व्यापक करने की आवश्यकता है। स्वार्थवश मानव प्रकृति का विध्वंस कर रहा है जिससे पर्यावरण प्रदूषित होकर हमारा समाज विकृत हो रहा है। मानव के विकास ने उसे एक भय और विनाश की सीमा तक पहुंचा दिया है। साहित्य में वर्णित इन सार्वभौमिक नियमों, मान्यताओं को अपनाकर व्यक्ति एवं मानवीय समाज अपने सांस्कृतिक पर्यावरण को भी स्वस्थ कर सकता है। आज पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में भौतिक पर्यावरण की ही अधिकांशतः चर्चा होती है। यह ठीक है, किन्तु साथ ही आवश्यकता है मानव की सांस्कृतिक चेतना में क्रान्तिकारी परिवर्तन की। हमें आवश्यकता है सामंजस्य एवं सौमनस्य की जिससे हम प्रकृति को आत्मवत मानकर व्यवहार करें जिससे वह हमारे अनुकूल होकर फले-फूले।